

डॉ० हरिवंशराय बच्चन के साहित्य में चिन्तन के विविध परिदृश्य

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

एक सफल साहित्यकार काल की गति और कला को टुकराता हुआ ऐसे साहित्य का निर्माण करता है जिसके बीज में मानव जीवन के कल्याण के लिये संस्कार भरे होते हैं। ऐसे साहित्यकार का आग्रह समाज की परिधि में व्यक्ति की पहचान खोजने के साथ-साथ मानव मन की गुफाओं, कन्दराओं और भित्तियों का शिल्पी निर्मित ढांचा देकर मनोवैज्ञानिक तरीके से अपने परिवेश का यथार्थ निरूपित करना होता है। सफल साहित्यकार की इन्हीं परिस्थितियों में उसकी रचना युग-धारा से सम्पृक्त होकर ही रूपाकर पाती है।

साहित्य वाङ्मय में नया और पुराना कुछ भी नहीं होता है। साहित्य के माध्यम से जिस नवीनता एवं प्राचीनता की बात हम करते हैं “वह मूलतः और सारतः अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, और साथ ही सम्प्रेषण की क्षमता तक, भावना और विचार, कल्पना और यथार्थ, कला और जीवन, साहित्य और समाज की मान्यताओं को आंकने झांकने, समझने-परखने और अभिव्यक्त करने की केवल एक परम्परावादी दृष्टि भर है। यही वजह है कि हिन्दी कविता-धारा में नयी कविता का प्रस्फुटन एक ऐसी क्रांतिकारी घटना बन गई जिसकी स्वीकृति-अस्वीकृति को लेकर ढेरों प्रश्न चिन्ह खड़े होने लगे साथ ही कविता की नव्यता को अति तीव्र और दीर्घ एवं अन्तहीन विवादों के घेरे में खड़ा कर दिया।

डॉ० हरिवंशराय बच्चन छायावाद कालीन साहित्यिक परिवेश में भौतिक तथा आध्यात्मिक द्वन्द्व की समस्याओं से टकराते हुये उत्तर

छायावाद युग में जब प्रवेश करते हैं तो उनका कवित्व मुख्यता गायक की मादकता में डूब जाता है। “बच्चन यों तो छायावाद से प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में रूपान्तरण की अवधि के कवि दिखते हैं, जिनके भाषागत प्रयोगों को समीक्षकों ने उत्साह के साथ रेखांकित किया है और जिनकी अनुभूति की गहराई छायावादी कवियों से अधिक मानी है। इस दूसरी मान्यता से सहमत हो पाना निश्चय ही कठिन होगा। यहाँ आत्मपरकता और अनुभूति की गहराई में समीक्षकों ने कोई भेद नहीं समझा और फलतः छायावादी काव्य के प्रति अनजाने में ही एक बड़ा अन्याय कर डाला। फिर एक सिलसिला-सा बन गया।”⁽¹⁾ वैसे बच्चन जी की इस मादकता में अनेक स्तरों पर विरोध के स्वर जरूर उठे परन्तु इस सच से इन्कार नहीं किया जा सकता है। कि बच्चन का उत्तरकालीन काव्य दिनकर की उर्वशी और नरेन्द्र अंचल के गीत शारीरिक अनुभवों और उसके उल्लास का अकुंठ भाव से अंकन करते हैं। इस संदर्भ में पूर्व बच्चन और उत्तर बच्चन की संवेदना के बीच स्पष्ट अंतर परिलक्षित होता है, जिसकी विभाजक-रेखा उनके गीत संग्रह मिलन यामिनी में देखी जा सकती है। पहले दौर में अनुभव प्रधान है, दूसरे में शरीर। यहाँ रचना-समस्या यह है कि छायावाद की सांकेतिक शैली में संयोग-चित्र, उदाहरण के लिये आँसू का प्रसंग परिंभ कुम्भ की मदिरा/निश्वास मलय के झोंके, जहाँ कल्पना को उद्दीप्त करते हैं, वहाँ सीधी-सादी भाषा में शरीर के चित्र, शरीर को ही स्पर्श करते हैं। “उर्दू के कवि अपने सीधे भाषिक विधान में इसलिये विरह वेदना का चित्रण

अधिकतर लेते हैं। शरीर की भंगिमाओं को नहीं। इस सन्दर्भ में मधुबाला से लेकर 'एकांत संगीत' तक बच्चन अपने श्रेष्ठतम रूप में दिखाई देते हैं। इसके बाद का काव्य प्रायः उनके निजी सुख-दुख का लेखा होकर रह जाता है। पूर्व बच्चन का कृतित्व उत्तर-छायावाद का प्रतिनिधि और महत्वपूर्ण काव्य हैं।⁽²⁾ बच्चन जी तत्कालीन लोकमानस में इतने व्यापक और गहरे स्तरों पर उतर चुके थे जिसका कोई विकल्प उनके तत्कालीन समय के विरोधियों के पास उपलब्ध नहीं हो सका था। शायद इसका एक दूसरा पहलू यह भी था कि बच्चन का स्वर माधुर्य लोगों को झूमने पर विवश कर देता था। इसके साथ ही बच्चन की भाषा श्रोता के मन में उनकी अपनी भाषा जैसी लगती थी जो उनके संवेदना के स्तर पर गहराई से जुड़ जाती थी। मिट्टी का तन/मस्ती का मन/क्षण भर जीवन/मेरा परिचय, जब बच्चन ये पंक्तियां गाते ऐसे में, कुम्हार के घड़े को प्रतीक बनाकर परिचय देना पाठक को संवेदना के स्तर पर अपने से जोड़ देती है। "इसी प्रकार जब मधुशाला के पदों में बच्चन अपने स्वर माधुर्य को छलकाते हैं तो यह केवल स्वर का ही जादू नहीं, बल्कि उसमें निहित चुम्बकीयता होती है जो पाठक के मन को इतनी गहराई से बांध लेती है। मेरी जिह्वा पर हो अन्तिम वस्तु न गंगाजल, हाला/मेरे होठों पर हो अन्तिम वस्तु न तुलसी दल, प्याला। दे वे मुझ को कन्धा जिनके पग मग डग मग करते हों/और जलूँ उस ठौर जहाँ पर कभी रही हो मधुशाला।" बच्चन जब इन पदों को गा-गाकर सुनाते थे तो उनके स्वर का सम्भार, इन पदों का शब्द-विन्यास और इनमें निहित संवेदना एक रसायन बनकर श्रोता या पाठक के मन को अपने जादू में बाँध लेती थी।⁽³⁾ अपनी सम्प्रेषण क्षमता के बल पर डॉ. बच्चन ने जितना विशाल पाठक एवं श्रोता समुदाय हिन्दी जगत को उपलब्ध कराया, उसका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है। आत्मकथा के माध्यम से उत्तर छायावाद के प्रमुख

कवि बच्चन का लेखन इस युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और विवादास्पद रहा है। उनकी आत्म कथा के चार खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं – क्या भूलूँ क्या याद करूँ (1969), 'नीड़ का निर्माण फिर (1970)' बसेरे से दूर (1977)', दशद्वार से सोपान तक (1985)। इस आत्मकथा में लेखक ने अपने को केन्द्र में रखा है, उपलक्ष्य नहीं माना है। फिर कुछ जीवित व्यक्तियों, विशेषतः महिलाओं के सम्बन्ध में ऐसे उल्लेख दिये हैं जो बहुत शोभन नहीं कहे जा सकते। तीसरा खण्ड प्रवास-काल से सम्बन्ध होने के कारण ऐसे कई विवादों से मुक्त है। इसके अन्तर्गत एक रोचक तुलनात्मक विवेचन आपसे आप उभरता है लेखक के स्वदेशी इलाहाबाद विश्वविद्यालय और विदेशी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के बीच। इन दोनों परिसरों के बारे में कवि-दृष्टि के पर्यवेक्षण विशेष महत्व रखते हैं।⁽⁴⁾ बच्चन जी के साहित्य पर विशेष प्रभाव उमर खैय्याम का पड़ा था। आपने उमर खैय्याम की रूबाइयों को उनकी गहराइयों में समझने की चेष्टा की थी और इन गहराइयों में उन्हें वेदांत और उपनिषदों के दर्शन की स्पष्ट झलक भी दिखती है। 'खुरासान के इराल शहर में ग्यारहवीं शताब्दी में जन्में उमर खैय्याम एक दीर्घायु कवि थे और वे मूलतः गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। उन्हें केवल मदवी, रसगश्त, रिंद या नाफर्मान समझना भारी भूल है। फिट जेराल्ड ने भी उन्हें फारस का ज्योतिषी कवि – यानी कवि से भी पहले ज्योतिषी माना था। बच्चन जी सम्भवतः जान पेन के इस मन्तव्य से सहमत थे कि उमर खैय्याम औपनिषदिक सिद्धान्तों के पालक ही नहीं प्रचारक भी रहे होंगे। अतः उमर खैय्याम की अनेक रूबाइयों की व्याख्या वेदांत दर्शन के आलोक में भी की जा सकती थी। इस वैचारिक पृष्ठभूमि में बच्चन की मधुशाला के अर्थोमीलन को एक गम्भीर धरातल पर समझने की चेष्टा की जानी चाहिये।'⁽⁵⁾ इसमें कोई दो राय नहीं कि "अपनी लक्षणा और व्यंजना में, डॉ. बच्चन जी की मधुशाला एक लोकप्रिय रचना बन गई है तथा

वह हालावाद की भाव-भंगिमापूर्ण अमूर्त रहस्यात्मकता को व्यंजित करने के साथ ही युगातीत और युगीन समय सन्दर्भों को भी प्रतिबिम्बित करती है। “बैर कराते मस्जिद-मंदिर, मेल कराती मधुशाला जैसी पंक्तियां इसी मानी में पंथ-निरपेक्षता की ओर हमें प्रेरित करती हैं। बच्चन ने खैय्याम के हताशावादी चिन्तन से प्रभावित होकर भी जिजीविषा से सराबोर आशावादी चिन्तन का साक्षात्कार किया था, जहाँ एक ओर उमर खैय्याम जीवन की नश्वरता से हताश एवं अभिनिवेश (मृत्यु भय) से परास्त मन को क्षणवादी सुखात्मक दर्शन की मादक उत्तेजना में भुलाये रखना चाहते हैं वहीं दूसरी तरफ बच्चन की हाला चेतना की ज्वाला है जिसका पान करके कवि ‘मरण’ जीवन का महोत्सव मनाने लगता है क्योंकि बच्चन जी की हाला में निःसन्देह मानवीय आशाओं, आकांक्षाओं का भाव विह्वल उन्मेष तथा व्यथा विभोर परिस्थितियों में जीवन की जिस उद्दाम अभिलाषा का जलधि उद्वेलित होकर उसकी चेतना में क्रांति की हलचल मचा देता है, उसे अभिव्यक्ति देने के लिये तारुण्य की आरक्त, पलाश-ज्वाला से भरा हाला का प्रतीक ही सम्भव तथा सक्षम प्रतीत हो सकता था। “बच्चन के सम्पर्क में आकर उमर खैय्याम का मिट्टी का ‘प्याला’, ‘हाला’ तथा मधुशाला-सबका रूपान्तरण हो जाता है और वे अभिनव आनन्द, अभिनव जीवन चेतना तथा अभिनव युग के सौन्दर्य बोध के प्रतीकों में परिणित हो जाते हैं।”⁽⁶⁾ कुछ समीक्षकों का मानना है कि जिस हालावाद की नींव डॉ. बच्चन ने डाली थी, लगता है कि वह अब समाप्त की ओर है यह हमारी दृष्टि में उचित नहीं जान पड़ता है। क्योंकि हालावादी काव्य सृजन के पथ पर चलने वाले कवियों की आज भी एक लम्बी कतार है। ‘हालावाद गम से घबड़ाकर खुदकुशी करने की बात नहीं कहता, बल्कि वह गम को खोने की बात कहता है, गम को पीने की बात कहता है। अपने काव्य में हाला-प्याला का प्रयोग जितना डॉ. बच्चन ने

किया, उतना किसी अन्य कवि ने अब तक नहीं किया। हाला दुःख दर्दों के विस्मरण का साधन है। मधुशाला पर हो रहीं प्रतिक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में अपने एक संस्मरण में (इन्दौर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन) डॉ. बच्चन कहते हैं कि किसी ने गाँधी जी से शिकायत कर दी थी कि जिस सम्मेलन के आप सभापति हों उसमें मदिरा का गुणगान किया जाये, बड़े आश्चर्य की बात है। दूसरे दिन अंतरंग सभा की बैठक थी, रात के 12 बजे गाँधी ने मुझे सभा हाल के बगल वाले कमरे में मिलने को बुलाया। लोगों के मांगने पर भी गाँधी जी से मिलने का समय नहीं मिलता था, मुझे बुलवाने की खुशी थी, डर भी, अगर कह दें कि ‘मधुशाला’ न पढ़ा करूँ या नष्ट कर दूँ तो उनकी आज्ञा को टालना कैसे सम्भव होगा। गाँधी जी ने शिकायत की और मधुशाला के कुछ पद सुनने चाहे। कुछ सतर्कता मैंने भी बरती। चुन-चुनकर ऐसी रूबाइयाँ सुनाईं जिसके संकेतार्थ शायद उन्हें सहज ग्राह होते, दो की मुझे याद है –

मदिरा जाने को घर से चलता है पीने वाला,
किस पथ से जाऊँ, असमंजस में है वह भोला
भाला

अलग-अलग पथ बतलाते सब, पर मैं यह
बतालाता हूँ

राह पकड़ तू एक चला चल पा जाएगा
मधुशाला।

मुसलमान और, हिंदू हैं दो, एक, मगर, उनका
प्याला

एक, मगर, उनका मदिरालय, एक मगर उनकी
हाला,

दोनों रहते एक न जब तक मंदिर-मस्जिद में
जाते,

बैर बढ़ाते मंदिर-मस्जिद, मेल कराती मधुशाला।

‘इसमें तो मदिरा का गुणगान नहीं है।’ उनसे यह सुन और उनके द्वारा बख्शा जाकर मैं भागा। उनको भी समय नहीं था। शरीर से गाँधी जी के इतने निकट बैठने का मेरा पहला और अंतिम अवसर था।⁽⁷⁾ डॉ. बच्चन ने मधुशाला के माध्यम से एक सहज, सरल और कभी-कभी गद्य की समीपी काव्य-भाषा को खड़ी बोली में जन्म दिया। यह भाषा हृदय को छूकर मर्म-स्पर्शिनी बन गयी है। मधुशाला की एक दूसरी विशेषता यह थी कि कवि ने बहुत ही सतर्क होकर अपनी कल्पनाजन्य अनुभूति में ष्कपंजमक म्चमतपमदबमेद्ध अपने पाठकों और श्रोताओं को रमा दिया था। वास्तव में कल्पित अनुभूति इसलिये कि डॉ. बच्चन ने कभी शराब का स्वाद तक नहीं चखा था, किसी मधुशाला, मयखाने में जाने की बात तो दूर रही। बच्चन ने शराब के साथ अपने रिश्ते को बताते हुये एक स्थान पर लिखा है कि अमोड़ा के कायस्थ कभी शराब नहीं पीते। डॉ. बच्चन के यहाँ किंवदन्ती के रूप में यह लोग मानते हैं कि यदि कोई शराब पियेगा, तो कोढ़ी हो जायेगा। अपने कुशल काव्य नेतृत्व के जरिये पाठकों को भ्रमित रखने के लिये उत्तर भारत की लोकधारणा और चन्द्रवाई के एक छप्पय की पंक्ति का सहारा लेते हुये एक ऐसी रुबाई लिख दी –

मैं कायस्थ कुलोदभव, मेरे।

पुरखों ने इतना ढाला

मेरे तन के लोहू में है

पचहत्तर प्रतिशत हाला,

पुश्तैनी अधिकार मुझे है

मदिरालय के ऑगन पर,

मेरे दादों-परदादों के

हाथ बिकी थी मधुशाला।

इस पर व्यंग्य का पुट हो सकता है लेकिन अपनी विदेश यात्राओं और इंग्लैण्ड-प्रवास के बावजूद

बच्चन शराब के स्वाद से अपरिचित थे। इसलिये मधुशाला अपनी अभिधा में कल्पित अनुभूतियों के कारण एक अच्युत ब्रह्मचारी द्वारा लिखित कोक शास्त्र के सम्भोग प्रकरण जैसी कृति है। हालावादी कवि संसार की विषम परिस्थितियों से संघर्ष नहीं करता; वह तो अपनी पीढ़ा को मदिरा की बोतल में ढालता है। किसी वस्तु को वह तोड़ता नहीं; टूटे हुये दिलों को जोड़ता है। डॉ. बच्चन की व्यक्तिवादी कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य यही है। यही तत्व उन्हें हालावादी कवि की श्रेणी में ला खड़ा कर देता है – पीने वालों ने/मदिरा का मूल्य/हाय! कब पहचाना, फूट चुका जब मधु का प्याला, टूट चुकी मधुशाला। कितनी ही विषम परिस्थितियाँ कवि बच्चन के लिये अपने आपको संघर्ष से मस्ती की ओर उन्मुख करती हैं क्योंकि मस्ती के लिये मस्ती चाहिये, यह डॉ. बच्चन के लिये उनके अपने जीवन का मूल मंत्र रहा है –

पीकर मदिरा/मस्त हुआ तो/प्यार किया क्या
मदिरा से ?

मैं तो पागल हो उठता हूँ – सुन लेता यदि
मधुशाला।

महाकवि सुमित्रा नंदन पंत के अनुसार – “मधुशाला अमृत संजीवनी है, जिसका पान कर मृत्यु भी जीवित हो उठती है।” उर्दू फारसी शैली में जितनी इश्क मिजाजी तथा साकी और शराब के प्यालों की खुमारी बच्चन की कविताओं में मिलती है; उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी मधुशाला इस युग की गीता है; मृदुभावों के अंगूरों की हाला है/पर कैसे ?

प्रियतम ! तू मेरी हाला है/मैं तेरा प्यासा प्याला।

अपने में मुझको भरकर/तू बनता है पीने वाला।।

मृदु भावों के अंगूरों की आज बना लाया हाला।

प्रियतम ! अपने हाथों से आज पिलाऊँगा
प्याला।।

इन पंक्तियों के अमर गायक डॉ. बच्चन जी की मधुशाला में भाँति-भाँति के रसों की भरमार है। विशेषता यह है कि उनके गीतों को पीते-पीते न तो पीने वाले थकते हैं और न तो पिलाते-पिलाते पिलाने वाले ही। ऐसा लगता है कि डॉ. बच्चन की मदिरा पीने वालों की प्यास कभी मिटती नहीं।

**कभी न कण भर/खाली होगा/लाख पियें दो
लाख पियें**

**दिन को होली/रात दिवाली/रोज मनाती
मधुशाला।**

डॉ. बच्चन जी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कविता में बोलचाल का प्रयोग करते हैं। इस सन्दर्भ में यह लक्षित करना रोचक है कि कैसे घरेलू पुकार का साधारण नाम बच्चन आधुनिक हिन्दी कविता का क्रमशः एक महत्वपूर्ण नाम बन गया। बच्चन का ध्यान उर्दू-काव्य शैली पर भी था, जहाँ भाषा के बोले जाने वाले रूप का प्रयोग सर्वाधिक काम्य रहा है, जहाँ गजल लिखी नहीं कही जाती है। बोलचाल वे अपने नगर इलाहाबाद से सीखते हैं, तो उर्दू काव्य-शैली के प्रभाव के लिये उसके सबसे बड़े कवि मीर के प्रति आभारी हैं – “कोई न खड़ी बोली लिखना आरम्भ करे। अंदाज मीर का बे-जाने बे पहचाने। बच्चन अपने काव्य विकास के क्रम में उत्तरोत्तर उर्दू की साफगोई की ओर झुकते गये। पर उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि उर्दू बोलचाल का मुहावरा हिन्दी की शब्द-व्यंजना-प्रधान काव्य भाषा से मेल नहीं खाता। यहाँ वह महज इतिवृत्त कथन जैसा होकर रह जाता है।”⁽⁶⁾

परम्परा एवं आधुनिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये एक-दूसरे के पूरक हैं। परम्पराओं का अनुगामी व्यक्ति आधुनिक भी हो सकता है और आधुनिक- विचार प्रधान व्यक्ति परम्पराओं का अनुगमन भी कर सकता है। जीवन के परिप्रेक्ष्य में बच्चन न तो पूर्णतः परम्परावादी थे और न उन्होंने आधुनिकता का अंधानुकरण ही

किया है। सदियों से चली आ रही रूढ़ियों एवं परम्परा के अन्तर्गत आने वाले उन समस्त तथ्यों का, जो व्यक्ति विशेष की उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करते हैं। बच्चन ने उसका पूरी तरह से बहिष्कार किया है और जो विकास का पथ प्रशस्त करते हैं, उन्हें अंगीकृत किया है। हिन्दू समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे धार्मिक कर्मकाण्डों, पुराण पंथियों द्वारा सद्गति दिलाने के उद्देश्य से मरणोपरान्त किये जाने वाले कर्मों के प्रति बच्चन ने पूर्ण रूप से अनास्था प्रकट की है। अपनी आत्मकथा में बच्चन का कहना है कि दाह तो मैं कर दूँगा, पर ‘कर्म’ नहीं, यानी दाह से सम्बद्ध रोष कर्मकाण्ड नहीं। मुझसे यह नहीं होगा। मैं एक वस्त्र ही, छरी-लौटा ले, तख्त पर चटाई डाल कर बैठूँ और वह सब खटराग करूँ जो नाई, ब्राह्मण मुझे कराये। इन सब बातों से मेरा विल्कुल विश्वास नहीं।”⁽⁹⁾

**पितृ पक्ष में, पुत्र उठाना/अर्घ्य न कर में, पर
प्याला**

**बैठ कहीं पर जाना गंगा-सागर में भरकर हाला
किसी जगह की मिट्टी भीगे, तृप्ति मुझे मिल
जायेगी**

**तर्पण-अर्पण करना मुझको/पढ़-पढ़कर के
मधुशाला।।**

कहा जाता है कि देवकी नंदन खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिये लोगों ने हिन्दी भाषा सीखी। बच्चन के बारे में भी यह कहा जा सकता है कि जिन्हें कविता के प्रति कोई रुझान नहीं था उन लोगों ने बच्चन की कविताओं को सुनकर कविता पढ़ना सीखा और कविता की परिधि को विस्तृत किया।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जीवन के दग्ध अनुभवों ने बच्चन को नई दृष्टि दी। महाकवि निराला की भाँति आंसुओं को भीतर ही भीतर पीकर, उनकी ऊर्जा और सौंदर्य में, अपनी कविता को स्वर्ण की तरह चमकवान

बनाया। उमर खैय्याम की रूबाइयों का गायक जिसने साक्षात् मनुष्य की आकांक्षाओं को संसार की सीमाओं के अन्दर घुटते-टूटते साथ ही व्यक्ति के सुकुमार स्वप्नों को संसार के कठोर सत्यों से टक्कर खाकर चूर-चूर होते देखा है। इन रूबाइयों के अन्दर एक उद्विग्न और आर्त चेतना की पुकार है, एक विषण्ण और विपन्न मन का रोदन है, एक दलित और भग्न हृदय का क्रन्दन है। विष्णु प्रभाकर जी के शब्दों में अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा जो उन्होंने श्रद्धांजलि स्वरूप डॉ. बच्चन की स्मृति में कहीं थी। “बच्चन जी ज्ञानी कवि थे; उमर खैय्याम की रूबाइयों पर आधारित मधुशाला को अपनाकर हिन्दी साहित्य को इस प्रकार उन्होंने प्रस्तुत किया कि मधुशाला हिन्दी जगत की हो गई। जब वे गाकर मधुशाला सुनाते थे तो एक अद्भुत वातावरण पैदा हो जाता था।”⁽¹⁰⁾

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 184
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 187-188
3. बच्चन : काव्य-भाषा का जन संस्कार, डॉ. रामकमल राय, हिन्दी अनुशीलन, पृ. 9
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 258
5. बच्चन जी की स्मृति में – डॉ. कुमार विमल, हिन्दी अनुशीलन, पृ. 15, 16
6. बच्चन के साहित्य में सौन्दर्यानुभूति, श्रीमती माधुरी शुक्ला, पृ. 196
7. राह पकड़ तू एक चला चल, अक्षर शिल्पी, अक्टूबर-दिसम्बर 2005, पृ. 9
8. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 186
9. बच्चन नीड़ का निर्माण फिर, पृ. 21, 13
10. हिन्दुस्तान, 20 जनवरी 2003, पृ. 16